International Journal of Advance and Applied Research (IJAAR) ISSN – 2347-7075
Impact Factor –6.457
Peer Reviewed Bi-Monthly Vol.6 No.4 Mar–Apr 2019

जगत् माया है तो ब्रह्म मायाधिपति

डॉ. निहाल सिंह 'इमलिया'
सहायक आचार्य, संस्कृत
महारानी श्री जया राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, भरतपुर (राज.)
Email Id - nihal.imalia@gmail.com

मायटाप् संयोग से मीयतेऽनयेति अर्थ में निष्पन्न माया शब्द का अर्थ है भ्रम या मिथ्या आभास। प्राणी अपने आस-पास दृष्ट जगत् को ही सर्वोपरि समझता है। इसी भ्रम में वह उम्रभर मोह, माया आदि सांसारिक विभ्रम में अपने आप को फंसा कर ईश्वरीय माया में फंस कर ही रह जाता है। इस जगन्माया के विविधरूपों के इन्द्रजाल से मुग्ध हो अपने पुरुषार्थ को भी भुला देता है। सामान्य प्राणी कभी सृष्टि की उत्पत्ति, जगत् में व्याप्त चराचर विविध तत्त्वों की उत्पत्ति विषयक तथ्यों के विषय में जानने, समझने की कभी कोशिश नहीं करता है।

कुछ चिन्तक, योगी, ऋषि-महर्षियों ने योगज समाधि, शुद्धसात्विक, ऐकान्तिक एकाग्रबुद्धि द्वारा इन्द्रिय निग्रह तथा चंचल मनोवृत्तियों को वश में करके सृष्टि एवं सृष्टि के मूल कारकतत्वों को गम्भीरतया समझा एवं जगत् में भ्रमवश जीवन-यापन करने वाले अज्ञानियों के समक्ष इस जगन्माया के स्वरूप को व्याख्यायित किया। वेद, उपनिषद्, गीता, भागवद्, वेदान्तादि में ऐसे ही चिन्तनों को चुन-चुन कर लिपिबद्ध कर सार एवं सरल रूप में जगत् को समझने का दृष्टिकोण प्रदान किया गया जिससे मानव को जगत् की माया से उभरने का एक मार्ग प्राप्त हुआ। यह ज्ञान अथवा बोधसम्पत्ति ही मानव जीवन की समस्त व्याधियों की महौषध है, अमृतत्व और चिदानन्दसुखसामग्री की प्राप्ति का एकमात्र उपाय है। दृष्ट जगत् परम ब्रह्म की मायाशक्ति के रूप में सर्वश्रेष्ठ शक्ति है, जिसे पराशक्ति एवं अन्तरंग शक्ति के रूप में भी जाना जाता है। ईश्वर जीवशक्ति के माध्यम से जैव जगत् का सृजन करता है।

ईश्वरीय महामाया (योगमाया) परब्रह्म की अनन्त एवं सर्वश्रेष्ठ शक्ति है। पराशक्ति, अन्तरंगशक्ति, जीवशक्ति द्वारा वे अनन्तकोटि जीवों को प्रकट करते हैं। उनकी माया (जगन्माया) के द्वारा विश्व का सृजन, पालन और संहार की प्रक्रिया होती है।

सृष्टिस्थितिप्रलयसाधनशक्तिरेका।
छायेव यस्य भुवनानि बिभर्ति दुर्गा।।[i]

संसार की सृष्टि, स्थिति और संहार की साध्या शक्ति पराशक्ति एवं अपराशक्ति स्वरूपा दुर्गा सभी लोकों का पालन करती हैं। पर और अपर सबसे परे रहने वाली परमेश्वरी कहा गया है -

परापराणां परमा त्वमेव परमेश्वरी। [ii]

ईश्वरीय माया नरसामान्य की समझ से परे है क्योंकि ईश्वर लीलाधारी व मायाधारी कहलाते हैं। वे एक होकर भी बहुरूपिया होते हैं।

एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति। [iii]
इन्द्रो मायाभिः पुररूप ईयते। [iv]

इन्द्र ने मायाशक्ति से विभिन्न रूप प्राप्त किये, परन्तु वह निश्चय ही अभिन्न भी है; क्योंकि यह छिन्न नहीं है, खण्डित नहीं है। परब्रह्म अखण्ड हैं। गीता कहती है-

मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना।
मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः।[v]

अर्थात् यह दृष्ट सर्वभूतात्मक ब्रह्माण्ड मेरे अव्यक्त रूप से युक्त है, सभी जीव मुझमें हैं परन्तु मैं उनमें विद्यमान नहीं हूँ। यही अचिन्त्य-भेदाभेद है। वे इहलोक से अलग नहीं तो विश्व के अन्दर भी नहीं है। यही माया है। मायाशक्ति में व्यतिरेक व्यापार है।

ऋतेऽर्थं यत्प्रतीयेत।[vi]

अर्थात् बिना अर्थ के भी जिसकी प्रतीति प्रतीयमान होती रहे, वह माया होती है। जैसे तालाब में चांद की छाया या प्रतिकृति के समान उसमें चन्द्र की प्रतीति तो है, परंतु वास्तव में चन्द्रमा नहीं है। भूत, देवता व इन्द्रियरूपात्मक जगत् सत्य भी है और मिथ्या भी।

जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादिरतः चार्थेष्वभिज्ञः स्वराट्,
तेनेदं ब्रह्म हृदा य आदिकवये मुह्यति यत् सूरयः।
तेजोवारिमृदां यथा विनिमयो यत्र त्रिसर्गोऽमृषा,
धाम्ना स्वेन सदा निरस्तकुहकं सत्यं परं धीमहि।।[vii]

श्रीमद्भागवत के प्रारम्भ में ही कहा गया है कि सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि, स्थिति एवं सर्वनाश के मूल कारण ईश्वर इस ब्रह्माण्ड से परे स्वयं प्रकाशमान हैं। आदिकवि के समक्ष जिसने सृष्टि विषयक तत्व को जिसने प्रस्तुत किया तथा जिस ज्ञान हेतु बड़े-बड़े ज्ञानी भी भ्रमित होते हैं। जैसे रेगिस्तान में सूर्यकिरणें जलाभाव में भी जलतरंगाभास कराती हैं, जैसे जलती आग लकडी के रूप में दिखाई देती है, वैसे ही जाग्रति, सुषुप्ति व स्वप्नरूप तीन अवस्थाएं भूत, वर्तमान, भविष्य आदि मिथ्या होते हुए भी सत्य प्रतिभासित होते रहते हैं। ऐसे परम सत्य का माया के आवरण से परे आत्मज्ञान व योगज समाधि से ही जगत् दर्शन सम्भव है। सकल विश्व माया है परन्तु माया का जनक वही सत्यस्वरूप परम ब्रह्म है। सांख्यसूत्र में भी कहा गया है -

शून्यं तत्त्वं भावो विनश्यति वस्तुधर्मत्वाद्विनाशस्य।[viii]

केवल भाव का ही अभाव होता है, तत्त्वतः शून्यता ही है। संसार जिस रूप में दृश्यमान है वैसा वास्तव में है नहीं, क्योंकि भाव का नाश होता है, वस्तुरूप प्रकट होना धर्म है। एक उपनिषद् उक्ति भी यही कहती है -

देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम्।[ix]

परमात्मा ब्रह्म अपनी त्रिगुणात्मिका प्रकृति अर्थात् माया को आगे करके अपने आप को छिपाए हुए रहते हैं। माया आवरण शक्ति है, परंतु माया ब्रह्म को पूर्णरूपेण निरुद्दिष्ट अथवा शून्यमय नहीं कर देती, बल्कि इसके बदले सृष्टि को प्रकट कर देती है। ईशावास्योपनिषद् में भी कुछ इसी तरह की व्यक्ति हुई है -

हिरण्यमयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।
तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये।।[x]

यह जगत् स्वर्णमय एवं ज्योतिर्मय स्वरूप वाला है। इस सांसारिक जगत् रूपी माया में व्यक्ति सदैव उलझा रहता है। परमात्मा भी सबसे पहले प्राणी का साक्षात्कार इस माया रूप प्रकृति से ही कराता है और स्वयं को निगूढ़ रखता है परन्तु साधक अर्थात् ब्रह्म के साक्षात्कार का अभिलाषी उपासक येन-केन प्रकारेण इस माया को तिरोहित कर आदित्यमण्डल में स्थित मायाधिपति सत्यस्वरूप परमेश्वर से मिलन की कामना करता है।

मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्।
तस्यावयवभूतैस्तु व्याप्तं सर्वमिदं जगत्।। [xi]

साधक अविद्या एवं विद्या, असम्भूति एवं सम्भूति के भेद को शनैः-शनैः समझकर प्रकृति रूपी माया को छोड़ मायाधिपति परम ब्रह्म से साक्षात्कार कर लेता है।

विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा सम्भूत्यामृतमश्नुते। [xii]

माया भगवान की शक्तिरूपा प्रकृति के रूप में है, तो मायाधिपति परम ब्रह्म परमेश्वर हैं। दोनों के कार्य-कारण रूप एकत्व भाव से ही यह संसार व्याप्त है। प्रकृति और पुरुष दोनों के समन्वय से ही सृष्टिनिर्मिति हुई है। माया के विभ्रम का एक उद्धरण कठोपनिषद् में भी देखा जा सकता है -

ये ये कामाः दुर्लभाः मर्त्यलोके,

सर्वान् कामांश्छन्दतः प्रार्थयस्व।
इमाः रामाः सरथाः सतूर्या,
न हीदृशा लम्भनीया मनुष्यैः।। [xiii]

यमराज नचिकेता को विभिन्न प्रकार के प्रलोभन देकर ब्रह्म की माया में ही फंसाना चाहते थे, परन्तु दृढप्रतिज्ञ नचिकेता ने सभी प्रलोभनों, माया का तिरस्कार करते हुए कहता है - श्वोभावा मर्त्यस्य यदन्तकैतत्। यह सांसारिक मायावी वस्तुएं क्षणभंगुर हैं। मुझे तो वह ज्ञान चाहिए जिससे दिग्दिगन्त प्रकाशित हो उठें।

मायाधिपति तो स्वयंभू प्रकाशस्वरूप हैं। समस्त ज्योतियों को भी आलोकित करने वाले हैं। जैसा कि श्रीमद्भगवद् गीता में कहा गया है -

न तद् भासयते सूर्यो न शशांको न पावकः।

यद् गत्वा न विवर्तन्ते तद्धाम परमं मम।। [xiv]

माया की इस विश्वोद्घाटन शक्ति को ही हम देख पाते हैं। यह इन्द्रजाल या माया जाल फैलाने वाली नाना विचित्र भावविभाविनी विशिष्ट शक्ति है, जिस के अधीन रहना सामान्यबुद्धि प्राणियों के लिए एकमात्र उपाय है। सत्य तत्त्व प्रकृति रूपी माया के पीछे छिप जाता है। ब्रह्म के सकल विभावों को व्याप्त कर द्विरूपा माया अधिष्ठित है।

व्यक्ति के अन्दर कामना, वासना, आशा, निराशा, भूख, प्यास, सुख, दुःख, प्यार, प्रेम, धोखा, हंसना, रोना आदि सब माया के विलास हैं। इस माया की उलझनों में उलझे हम सामान्यबुद्धि जन भगवद्भक्ति से विरक्त हो गये हैं। परन्तु यदि माया अथवा प्रकृति न होती तो सम्भवतः हम भी न होते और न ही ब्रह्म को जानने की चेष्टा करते। ब्रह्म को जानने के लिए प्रकृति या माया भी आवश्यक होती है। जैसा कि ईशावास्योपनिषद् के एक मन्त्र में बताया गया है -

विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते।। [xv]

अर्थात् जो प्राणी अविद्या को छोडकर केवल विद्या अर्थात् ब्रह्म की उपासना करता है, वह पुरुष परमात्मा को कभी भी प्राप्त नहीं कर सकता। इसलिए कहा गया है कि विद्या (ब्रह्म) के साथ-साथ अविद्या अर्थात् इस जगत् या सृष्टि या इस माया को समझना आवश्यक है। ऐसा करने से वह अविद्या से इहलोक को पार करता है तथा विद्या से परमात्मा को प्राप्त करता है।

सा विद्या परमा मुक्तेर्हेतुभूता सनातनी।
संसारबन्धहेतुश्च सैव सर्वेश्वरेश्वरी।। [xvi]

गहन रजनी में कुहरे के समान और दिन के आलोक में जुगनू के समान वह ज्योति अदृश्य हो जाती है। महारहस्यमयी महामाया शत्रु, परीक्षाविधायिनी तथा उद्धारकारिणी है। योगमाया चिदानन्द के आस्वादन का विधान करने वाली है। माया के प्रभाव से ब्रह्म सत्य ब्रह्म-विस्मरण का हेतु है। माया-मोह करुणामयी कल्याणमयी जननी है, इस बात को भूलने पर ही माया-मोह के वशीभूत होना पड़ता है। विद्या तथा दिव्य अवबोध भी माया ही है।

संसार में यदि केवल ज्योति होती तो उस ज्योति को कोई प्राप्त नहीं करता; यह न रहने के समान ही होती। ज्योति की प्रतिष्ठा के लिये अन्धकार की आवश्यकता है। अस्तित्व की प्रतिष्ठा के रूप में जो द्वैत है, माया उसका विधान करती है। माया को समझे बिना जगत् का तत्त्व समझ में नहीं आ सकता। जगत् अत्यन्त सुदुर्गम समस्या है; माया के विज्ञानालोक में विश्व कुछ-कुछ बोधगम्य होता है। माया के साथ अदृष्ट-तत्त्व का भी अनुशीलन करना आवश्यक है। हमें महामाया की आराधना करके परब्रह्म की प्रीति प्राप्त करनी चाहिये, अमृत लाभ पाकर कृतार्थ होना चाहिये।

सन्दर्भसूची

1. ब्रह्मसंहिता 5.44
2. दुर्गासप्तशती 1.82
3. ऋग्वेद 1.164.46
4. तत्रैव 6.47.18
5. श्रीमद्भगवद्गीता 9.4
6. श्रीमद्भागवतपुराण 2.9.33
7. तत्रैव मंगलाचरण 1
8. सांख्यसूत्र 1.44
9. श्वेताश्वतरोपनिषद् 1.3
10. ईशावास्योपनिषद् 15
11. श्वेताश्वतरोपनिषद् 4.10
12. ईशावास्योपनिषद् 14
13. कठोपनिषद् 1.1.25
14. श्रीमद्भगवद्गीता 15.6
15. ईशावास्योपनिषद् 11
16. दुर्गासप्तशती 57-58